स्कूल की संस्कृति का सवाल

❑ राजाराम भादू

पाठ्यक्रम और मूल्यांकन मूलत: शिक्षा-दृष्टि से निर्धारित होने वाले क्षेत्र हैं, इससे शायद ही किसी को असहमति हो । पाठ्यक्रम की पुर्नरचना को अस्तित्वमान शिक्षा-प्रणाली और स्कूल की संस्कृति के व्यापक संदर्भ से अलग कर नहीं देखा जा सकता । क्या हम समूची शिक्षा प्रणाली को लेकर कोई पुर्नविचार करने जा रहे हैं ? क्या मुख्यधारा (सरकारी तंत्र द्वारा संचालित) स्कूलों की मौजूदा संस्कृति में किसी गुणात्मक बदलाव की बात सोच रहे हैं ? या सिर्फ पाठ्यक्रम में रद्दोबदल से ही संतुष्ट हो जाने वाले हैं ? शिक्षा की मुख्य धारा से इतर जो नवाचार और वैकल्पिक प्रयोग किये गये, उन्हें अभी तक मुख्यधारा में लाने के लिए हम कितने उत्सुक या उत्साहित रहे हैं ? ये कुछ प्रश्न हैं जिनसे पाठ्यक्रम पुनर्निधारण का समकालीन प्रसंग जुड़ा हुआ है ।

वैकल्पिक शिक्षा के प्रयोगों ने विगत दशकों में कुछ चीजों को लेकर लोगों का बराबर ध्यान आकृष्ट किया है । निसंदेह ये चीजें विशिष्ट शैक्षिक चिंतन और सरोकारों से जुड़ी हैं । बच्चे की अवधारणा को लेकर ही बात करें तो उसे 'एक स्वतंत्र इयत्ता' के रूप में यहां मान्यता दी गई है । यह मान्यता शिक्षक से बच्चे के रिश्ते को बदल देती है। यदि शिक्षक बच्चे की स्वतंत्र अस्मिता को मान्यता देता है तो वह उसके प्रति सकारात्मक सम्मान भाव प्रदर्शित करता है । बच्चे ओर शिक्षक के बीच संपन्न होने वाली अन्र्तक्रिया में गुणात्मक फर्क आ जाता है । शिक्षक का बच्चे के प्रति सहज-अनुभुति भाव विकसित होता है । बाल-केन्द्रित शिक्षण की समझ इसी मूल अवधारणा पर टिकी है । गतिविधि आधारित शिक्षण, बच्चे का खुद करके सीखना और बच्चे को मुक्त अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करना इस समझ की स्वभाविक निष्पत्तियां हैं ।

औपचारिक स्कूल प्रणाली में कक्षा-शिक्षण निर्धारित पाठ्यक्रम पर आधारित होता है । बल्कि बच्चों को इस पाठ्यक्रम का बोध कराना ही शिक्षण का मुख्य लक्ष्य हो जाता है । मूल्यांकन प्रणाली भी पाठ्यक्रम की अन्र्तवस्तु पर ही केन्द्रित होती है । प्रतियोगिता उन्मुख इस मूल्यांकन में अंक प्राप्ति पर सर्वाधिक जोर दिया जाता है । अंक-प्राप्ति के आधार पर कुछ बच्चों को छांटकर एक तरफ कर दिया जाता है और अधिकतर बच्चों को दूसरी तरफ । ऐसी स्थिति में घोषित पाठ्यक्रम के समानान्तर एक प्रच्छन्न पाठ्यक्रम भी सक्रिय रहता है, जो स्कूल की संस्कृति में द्वैत उत्पन्न कर देता है ।

औपचारिक स्कूल तंत्र में मूल्यांकन शिक्षा को एक उत्पाद की तरह संख्यात्मक रूप से आंकता है । जबकि वैकल्पिक प्रयोग शिक्षा को एक सतत प्रक्रिया मानते हुए इसे गुणात्मक रूप में देखते है । पाठ्यक्रम और शिक्षण-विधि के संयोग से यह प्रक्रिया निष्पन्न होती है । वैकल्पिक शिक्षा में अधिकतर बच्चों को आगे लाने की कोशिश होती है और पीछे छूट गये बच्चों पर अधिक ध्यान देने की जरूरत अनुभव की जाती है । इस प्रणाली में मूलत: शिक्षण-प्रक्रिया का मूल्यांकन किया जाता है ।

किसी स्कूल में बच्चों के समूह (या किसी कक्षा) का अवलोकन करते हुए यदि हम देखते हैं कि बच्चे परस्पर एक दूसरे के सहयोग से सीख रहे हैं वे मुखरता से अपने प्रश्न रख रहे हैं या खुलकर अपनी बात कह पा रहे हैं । वे अपनी आत्मछवि को लेकर सजग हैं । उनमें चीजों को लेकर उत्सुकता है । वे कोई पहल करने से कतराते नहीं हैं। उनकी सृजनात्मकता और कल्पनाशीलता के लिये पर्याप्त अवसर हैं जिनका वे समुचित उपयोग कर रहे हैं तो ये सब चीजें किस बात की सूचक हैं ? जाहिर है कि इससे एक खुली और सृजनशील स्कूल संस्कृति का पता चलता हैं । यह संस्कृति केवल किसी पाठ्यक्रम या नियम-कायदों के बल पर नहीं खड़ी की जा सकती । इसके लिए कुछ वृहत्तर संदर्भ अपेक्षित हैं ।

कहना न होगा कि दशकों से चला आ रहा (और समय समय पर संशोधित/परिवर्धित होता) औपचारिक पाठ्यक्रम विस्तार से बच्चों के सर्वागींण विकास और चरित्र-निर्माण वगैरह की बात करता है । पाठ्यक्रम बच्चों के विकास का एक मूल्यगत ढांचा भी प्रस्तुत करता है । लेकिन हम सभी जानते हैं कि वहां कितना और क्या हो पा रहा है ? यह देखने की बात है कि यहां बच्चा क्या है ? स्कूल में वह क्या बन रहा है? बच्चों के रुझानों को स्कूली शिक्षा किधर मोड़ रही है ? कक्षा में उनकी सृजनात्मकता के लिए कितने अवसर हैं ? बेशक, स्कूल बच्चे की पूरी जिन्दगी नहीं है । लेकिन स्कूल आने वाले बच्चे और स्कूल से बाहर रह जाने वाले बच्चों के बीच फर्क से इंकार नहीं किया जा सकता ।

यह विचार का मुद्दा है कि स्कूल से बाहर बच्चे के व्यवहार को हम शैक्षिक विमर्श में शामिल करें अथवा नहीं । कुछ लोग तो शिक्षा की सार्थकता को इसी कसौटी पर आंकने के पक्षधर हैं । यदि यह शिक्षा से अधिक अपेक्षा करना है, तो भी अभिभावकों की शिक्षा के प्रति आंकांक्षाओं को तो नजरअंदाज किया ही नहीं जा सकता। तब भी जब समाज भीषण दुरावस्थाओं से गुजर रहा हो, क्योंकि ऐसी विषम स्थिति में समाज शिक्षा को और भी उम्मीद की नजरों से देखने लगता है ।

यदि स्कूल की संस्कृति समाज की सीमाओं और कमजोरियों से मुक्त है तो बच्चों की बाहरी दुनिया में यह एक ताकत के रूप में प्रतिबिम्बित होगी । किन्तु हमारे औपचारिक स्कूलों की हालत क्या है ? वहां शिक्षक बच्चों के नाम तक नहीं जानते । इन स्कूलों के पाठ्यक्रम में जनतांत्रिक प्रणाली का बहुविध परिचय दिया गया है । किन्तु स्कूलों के आन्तरिक व्यवहार में विवेकशील मूल्य और दृष्टिकोण शायद ही परिलक्षित होते हैं । यहां बच्चों में आत्मनिर्भरता और स्व-निर्णय प्रक्रिया के दर्शन दुर्लभ हैं । बच्चे की शिक्षकों पर चिन्तनीय निर्भरता यहां कदम-कदम पर देखी जा सकती है । ऐसी स्थिति में बच्चे स्कूल और समाज के बीच किस सेतू का साधन बन सकता है ।

यह सही है कि स्कूल सामाजिक समस्याओं का अंतिम हल नही कर सकता । भूख और बेकारी जैसी चीजों का शिक्षा में तात्कालिक हल नहीं हैं। लेकिन हम देखते हैं कि परिस्थिति एक महत्वपूर्ण तथ्य है। मसलन, किसी सरकारी स्कूल में बच्चे से बात करते हैं और उसका जो व्यवहार होता है, उसका वैसा व्यवहार स्कूल से बाहर नहीं होता । स्कूल में यदि वह भय और असुरक्षा अनुभव कर रहा है तो स्कूल प्रश्न के घेरे में आ जाता है । शिक्षा में वे चीजें आनी चाहियें जिनसे समाज जूझ रहा है । ये बच्चों के मूल्य एवं दृष्टिकोण को बदल सकती हैं ।

आखिर ज्ञान का सामाजिक संदर्भ तो होता ही है । यदि हम शिक्षा से सामाजिक बदलाव की परोक्ष अपेक्षा भी रखते हैं तो बच्चों के स्कूल से बाहरी संदर्भ को भी छोड़ा नहीं जा सकता । यदि हम जनतांत्रिक मूल्यों की बात करते हैं तो हम जानते हैं कि ये निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष और गत्यात्मक हैं ।

हम स्कूल को घंटों में देखते रहे हैं । हम इसे बच्चे के व्यक्तित्व के संदर्भ में क्यों नही देखते? इस दृष्टि के बिना हम बच्चे पर स्कूल के प्रभाव को कैसे जान सकते हैं ? यदि हम बच्चे की विकसित होती समझ और उसके दृष्टिकोण के प्रति सचेत हैं तो क्या हमें यह नहीं देखना चाहिये कि वे भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में क्या प्रतिक्रिया करते हैं ? इसके बिना हम सीखने की प्रक्रिया के शैक्षिक परिप्रेक्ष्य को रूपायित होते नहीं देख सकते । यदि शिक्षा के मूल्यांकन के प्रति हम वास्तव में गंभीर हैं तो हमें देखना चाहिये कि आने से पहले वे बच्चे क्या थे और अब कहां हैं ? क्या चीजें हैं जो स्कूल के बाद भी रह गयी हैं और कौन-सी लुप्त हो गयी हैं ? अगर यह सब नहीं होता है तो फिर पाठ्यक्रम की क्या प्रतिष्ठा रह जाती है । सिर्फ उसे बदलते रहने से क्या होगा, यदि उसके परिप्रेक्ष्य के प्रति हम उदासीन हैं, उसके संदर्भों से कटे हुए हैं।

कोई कह सकता है कि स्कूल छोड़ने के बाद बच्चा बकरी चराता है । उसके लिए स्कूली शिक्षा का क्या उपयोग है देखने की बात यह है कि बकरी चराना खुद बच्चे ने अपनी पसंद से चुना है या वह बंधुआ बतौर बकरी चरा रहा है । यदि स्कूल ने पढ़ाने-लिखाने के अतिरिक्त बच्चे की समझ निर्मित की है तो वह बकरी चराते हुए भी परिस्थिति से जूझ सकता है और गांव की चीजों में सक्रिय हस्तक्षेप कर सकता है । यहां एक पुरानी बहस याद आती है । टॉलस्टाय की मान्यता थी कि स्कूल को बच्चों के निजी जीवन में दखल नहीं करना चाहिये । जबकि वसीली का कहना था कि बच्चे का चरित्र और शिक्षा अविछिन्न हैं । यदि हम सामाजिक बदलाव और निर्बलों के सशक्तिकरण को शिक्षा का ध्येय मानते हैं तो हमें क्या इस पुरानी बहस को आगे नहीं बढ़ाना चाहिये ? ◆